



नवगीत: सुधेश

1.

इस आभासी जग में
चाहने वाले बहुत हैं
पर मेरे पास नहीं कोई ।

दूर दूर से मुखड़े ललचाते
जिन्दगी धूप में पिघले
कुन्दन से चमक रहे तन
अन्त में पीतल के निकले ।
इस पथरीली दुनिया में
क्या दिन क्या रातें
संवेदना कहीं छिप छिप रोई ।

इन्टरनेट से पास हुई दुनिया
नदी तट सी दूर हो गई
गूगल ने समानान्तर संसार रचा
मेरे घर की पहचान खो गई ।
प्यार की कहाँ शीतलता
तपती आँखों से लगता है
अब के बरसात न रोई ।

जो जीवन में नहीं मिला
नहीं मुझे मिलना था
मैं जंगल का फूल अकेला
खिल कर भी नहीं खिला ।
तन की मैली चादर को

दिल्ली की मैली जमना ने
नहीं धोई तो नहीं धोई ।

2.

रह गई है मेरी जिन्दगी
एक भूली हुई सी चाह बन कर ।

जीवन सिन्धु में आए बहुत से ज्वार
बच गया पर डूबने से
जवानी में बुढ़ापा आगया कमबख्त
क्यों कर बचा मैं ऊबने से ।
बडा था हौसला मंजिल पर पहुँचने का
रह गई मगर यह जिन्दगी
आह और कराह बन कर ।

जंगल में खिला था फूल
बिल्कुल अकेला बियाबान में
सब की आँखें चुरा कर
सूर्य का षड़यन्त्र था गहरा
दोपहर को रात कर दी
मेघ को लेगया दूर फुसलाकर ।

पानी का कहत धूप का अभाव
झेला सभी कुछ जीवन चाह बन कर।

साहित्यिक विमर्श

सुधेश

३१४ सरल अपार्टमेंट्स , द्वारका , सैक्टर १०

दिल्ली ११००७५

फोन ९३५०९७४१२०